बातचीत के मुद्दे : किशन पटनायक

शर्मनाक सदी

भारत के सबसे ज्यादा पतन का समय था अठाहरहवीं शताब्दी का ।इसी शताब्दी में भारत की प्रत्यक्ष गुलामी शुरु हुई , और शताब्दी के अंत तक (१७९९, टीपू सुल्तान की पराजय) भारत के बहुत बड़े हिस्से पर अंग्रेजों का वर्चस्व स्थापित हो गया था । इस शर्मनाक शताब्दी के बारे में एक संक्षिप्त जानकारी सबको होनी चाहिए । इतिहास की किसी अच्छी पुस्तक में साठ-सत्तर पृष्ठ पढ़कर भी इसके बारे में समझ बन सकती है । इस विषय पर सबसे अच्छी किताब शायद पण्डित सुन्दरलाल की " भारत में अंग्रेजी राज " है ।जब हम कहते हैं कि अठाहरवीं शताब्दी में भारत की प्रत्यक्ष गुलामी शुरु हुई , तो कोई यह तर्क न दे कि उसके पहले मुसलमानों का राज हो चुका था । ऐसी चीजों में, दोनों में फरक न करने पर निष्कर्ष निकालने में बहुत बड़ी गलतियाँ हो सकती हैं । मुसलमान आक्रमणों में भारत की पराजय हुई थी ; लेकिन मुसलमानों के शासनकाल में भारत किसी दूसरे देश का गुलाम नहीं था ।

अठारहवीं सदी के बारे में निम्नलिखित बातें समझने की जरूरत है । अंग्रेजों के शासन में (१९४७ तक) भारत की साधारण जनता की जो आर्थिक दशा हुई,उससे बेहतर अठारहवीं सदी में थी । भारत का व्यापार चोटी पर था ; गाँव का किसान कंगाल नहीं था ।लेकिन भारतीय समाज पंगु हो रहा था ; उसमें पूरी तरह जड़ता आ गयी थी । जाति प्रथा में इतनी संकीर्णता और कठोरता आ गयी थी कि जनसाधारण के प्रति शासक और संभ्रांत समूहों का व्यवहार अमानवीय हो गया था । शासक और संभ्रांत वर्गों में ही औरत की स्थिति सबसे ज्यादा अपमानजनक थी , भारतीय उद्योगों में सामर्थ्य था ; लेकिन उनमें लगे हुए लोगों को शूद्र कहकर उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता था । ऐसा समाज यूरोप की आक्रामक जातियों से लड़ नहीं पाया । उन दिनों राजाओं और नवाबों में कुछ स्वाभिमानी और अदम्य लोग भी थे । लेकिन शासकों और संभ्रांतों का सामूहिक चरित्र कायरतापूर्ण और अवसरवादी था । टीपू और सिराजुद्दौला जैसे लोग अपवाद थे (जैसे आज की राजनीति में कहीं - कहीं अपवाद मिल जाएंगे) , लेकिन औसत शासक और औसत सामंत चरित्रहीन था । विद्वानों और बुद्धिजीवियों में किताबी ज्ञान था , किंतु समाज और राष्ट्र को प्रेरित करने के लिए साहसिक विचार नहीं थे। पूरे देश के पैमाने पर अंग्रेजों के खिलाफ़ एक रणनीति नहीं बन पाई । १८५७ तक बहुत विलम्ब हो चुका था । भारतीय समाज के चरित्र की दुर्बलताओं को अंग्रेज समझ गये थे और उसीके मुताबिक अंग्रेजों ने अपनी भारत-विजय की रणनीति बनायी । उन दिनों भी भारत और चीन में उन्नीस-बीस का फर्क था । इसी कारण चीन पर यूरोप का आधिपत्य रहा , लेकिन प्रत्यक्ष शासन नहीं हो सका । जितना गुलाम भारत हुआ , उतना पूर्व एशिया के चीन , जापान आदि देश नहीं हुए ।

इतिहास के इस अध्याय की चर्चा हम इसीलिए कर रहे हैं क्योंकि आज भी उसी तरह का नाटक हो रहा है । आजादी के पचास साल बाद भी भारत के शासक और शिक्षित वर्गों ने सामाजिक चरित्र को बदलने की कोशिश नहीं की ।जनसाधारण और शिक्षित वर्ग की दूरी बढ़ती जा रही है ।नव साम्राज्यवादियों के प्रलोभनों और धमकियों के सामने हमारा शासक वर्ग झुकता जा रहा है । इस स्थिति के बारे में देशवासियों को आगाह करना है ।

पश्चिमी साम्राज्यवाद पहले आर्थिक संप्रभुता को छीनने की कोशिश करता है । अठारहवीं सदी में हम यही पाते हैं । पलासी युद्ध (१७५७) के बाद बंगाल के नवाब मीरजाफ़र ने ईस्ट इंडिया कंपनी को राजस्व वसूलने और जुर्माना लगाने के अधिकार समर्पित कर दिये।राजस्व वसूलना और जुर्माना लगाना सरकार का काम है । सरकारी कामों के निजीकरण की यह पहली मिसाल है । आज हम उदारीकरण नीति के तहत जब जब विद्युत विभाग , बीमा व्यवसाय ,खदानों , रेल , दूरसंचार आदि का निजीकरण करने जा रहे हैं तो उसकी असलियत यह है कि जिन कामों को सरकार करती थी उन कामों को अब विदेशी कंपनियाँ करेंगी । हमारी आर्थिक संप्रभुता का हस्तांतरण हो रहा है ।

जब ईस्ट इंडिया कंपनी को आर्थिक अधिकार मिलने लगे तब अधिकारों को मजबूत करने के लिए यह जरूरी लगा कि नवाब की गद्दी पर कंपनी का नियंत्रण रहे । गद्दी से किसको हटाना है और गद्दी पर किसको बैठाना है यह खेल कंपनी करने लगी । पहले मीरजाफ़र को बैठाया,फिर मीरकासिम को,फिर मीरकासिम को हटाकर मीरजाफ़र को । इसी तरह पूरे देश के राजाओं और नवाबों की गद्दियों का असली मालिक अंग्रेज हो गया ।

आज के समय में एशिया , अफ़्रीका , लातिनी अमरीका के देशों की गद्दी पर कौन बैठेगा,कौन हटेगा,इसकी साजिश अमरीका करता रहता है । भारत में एक प्रकार का जनतंत्र है ।जनसाधारण के द्वारा सरकारें चुनी जाती हैं ।विदेशी शक्तियाँ पैसों और दलालों के द्वारा दखल देने की कोशिश करती हैं । लेकिन भारत का प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति कौन होगा , इसपर उनका नियंत्रण नहीं है । हांलाकि वित्तमंत्री का पद संदेह के घेरे में आ चुका है । १९९१ से यह स्थिति बनी हुइ है कि अगर कोई व्यक्ति विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की पसंद नहीं है तो वह वित्तमंत्री नहीं बन सकेगा ।केन्द्रीय सरकार के जो अर्थनीति सम्बन्धी विभाग हैं उनके मुख्य प्रशासनिक पदों पर हमारे ऐसे अफसर स्थापित हो जाते हैं जिनका पहले से विश्व बैंक और मुद्राकोष के साथ अच्छा रिश्ता होता है।ये लोग कभी न कभी विश्वबैंक या मुद्राकोष के नौकर रह चुके हैं।ऐसी बातें खुली गोपनीयता हैं ।इसके बारे में देश के संभ्रांत समूह,शिक्षित वर्ग और प्रमुख राजनैतिक दलों के नेतृत्व से हम ज्यादा आशा नहीं कर सकते हैं । उन्हीं को माध्यम बनाकर साम्राज्यवादी शक्तियाँ आगे बढ़ रही हैं ।लेकिन जो आम शिक्षित लोग हैं,युवा और विद्यार्थी हैं,देहातों और कस्बों के सचेत लोग हैं' उनसे देश की वर्तमान हालत के बारे में अगर पर्याप्त बातचीत और बहस हो सके,तो संभव है कि देश में

एक चेतना का प्रवाह होगा । देश-निर्माण के लिए साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक राष्ट्रीय स्वाभिमानी चेतना बनाने में हरेक का योगदान होना चाहिए ।

वैश्वीकरण : देश रक्षा और शासक पार्टियाँ : किशन पटनायक

देश - रक्षा में हथियारों का प्रमुख स्थान नहीं । अगर आप राजनीतिमें , कूटनीति में , अर्थनीतिमें सब कुछ समर्पित करते जाएंगे , तो लड़ने के लिए क्या रह जाता है ? **आप अपने उद्योगों को , खदानों को , व्यापार को , भूमि और बंदरगाहोंपर अधिकार को , बैंक और बीमा को विदेशी शक्तियों को समर्पित करने के लिए तैयार हैं , तो परमाणु बम से किन चीजों की रक्षा करना चाहते हैं ?**

विदेशी पूँजी और बहुराष्ट्रीय कंपनियों से हमारा कैसा सम्पर्क रहेगा , यह केवल वित्तमंत्री का विषय नहीं है । देश - रक्षा का सवाल इससे जुड़ा हुआ है क्योंकि सम्राज्यवादी शक्तियाँ विश्वबैंक , मुद्राकोष जैसी आर्थिक संस्थाओं और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माध्यम से काम कर रही हैं , उनका मुकाबला हम कैसे करें और अपने राष्ट्र को गुलामी से कैसे बचायें , इसकी रणनीति बनाने वाला कोई विभाग हमारी सरकार का नहीं है। प्रतिरक्षा विभाग केवल सैनिक गतिविधियों से संबंधित है । विदेश मंत्रालय और प्रधानमंत्री का कार्यालय भी आर्थिक साम्राज्यवाद के प्रतिकार के बारे में कोई गम्भीर चर्चा नहीं करते हैं । इसका कारण यह है कि देश की शासक पार्टियाँ साम्राज्यवाद के प्रति नरम रुख अपना रही है ।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि भारतीय राष्ट्रीय जागरण और स्वाधीनता आंदोलन में सबसे बड़ी भूमिका कांग्रेस दल की रही ।लेकिन कांग्रेस का चारित्रिक पतन हो चुका है और जनाधार भी छिन्न-भिन्न हो चुका है । फिर भी इसकी शासक दल वाली हैसियत बनी हुई है । राष्ट्रीय स्तर पर दूसरा शासक दल है भारतीय जनता पार्टी । देश के लिए यह एक दुर्भाग्यपूर्ण संयोग है कि साम्राज्यवाद की चुनौती के सामने इन दोनों दलों की नीति झुकने की है ।दोनों का राजनैतिक चरित्र मीरजाफ़र के जैसा है ।यहाँ पलासी युद्ध के मीरजाफ़र की बात हम नहीं करते हैं ।हम नवाब मीरजाफ़र की बात कर रहे हैं - जो कंपनी की माँगों को पूरा करने के लिए तैयार हो जाता है । अटल बिहारी वाजपेयी और सोनिया गाँधी दोनों की भूमिका इस वक्त वही है । पेटेंट और बीमा संबंधी विधेयकों के सन्दर्भ में यह बात साबित हो गयी । दोनों को ले कर कुछ - कुछ आश्चर्य भी होता है ।कांग्रेस को लेकर इसलिए आश्चर्य है कि कांग्रेस मुख्य प्रतिपक्षी पार्टी थी (**लेख मई,१९९९ का है**), और शासक पार्टी (भाजपा) को इस मुद्दे पर अप्रिय करने का एक बड़ा मौका था । कांग्रेस ने यह मौका छोड़ दिया। इससे अंदाज होता है कि साम्राज्यवादी शक्तियाँ और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इन

विधेयकों को प्रेरित कराने के लिए इतना अधिक दबाव पैदा कर रही हैं कि प्रतिपक्ष के दल को भी शासक दल द्वारा लाये गये विधेयकों का समर्थन करना पड़ रहा है ।

भारतीय जनता पार्टी की सरकार बनने के पहले भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग पेटेंट तथा बीमा विधेयकों के विरोधी थे । भाजपा और रा. स्व. संघ ले लोगों का प्रशिक्षण ऐसा हुआ है कि वे राष्ट्रवाद और सांप्रदायिकता में फर्क नहीं कर पाते हैं । उनकी साम्प्रदायिक भावना ज्यादा प्रबल है और दबाव पड़ने पर उनका राष्ट्रवाद दब जाता है । और यही दृश्य देखने को मिला जब बीमा विधेयक को लेकर भाजपा के अन्दर विवाद खड़ा हुआ ।

इसमें कोई शक नहीं कि विदेशी शक्तियों का दबाव बहुत पड़ता है । लेकिन यह कहकर कायरता का समर्थन नहीं किया जा सकता । भारत की तुलना में चीन के नेतृत्व को अमेरिका का ज्यादा (या उतना ही) दबाव झेलना पड़ता है । लेकिन चीन का नेतृत्व दबंग है। चीन की किसी एक बात पर प्रशंसा होनी चाहिए तो उसके राष्ट्रवादी दबंगपन की होनी चाहिए । चीन सरकार की आर्थिक नीतियाँ गलत दिशा में जा रही हैं;फिर भी चीन की स्थिति तीसरी दुनिया के अन्य सभी देशों से बेहतर है ,कारण चीन का राष्ट्रवाद साम्राज्यवादी धमकी से दबता नहीं है ।अभी हाल में चीन के प्रधानमंत्री झुग रोंगजी अमेरिका गये थे ।चीन पर अमरीकी आरोपों का जवाब देते हुए झुग ने राष्ट्रपति क्लिंटन और उनके मंत्रियों को ऐसी खरी बात सुनाई कि अंग्रेजी अखबार वाले लिखते हैं क्लिंटन की बोलती बन्द हो गयी । श्री झुग अच्छी अंग्रेजी बोल सकते हैं , लेकिन अमरीका में उन्होंने अपनी भाषा में बात की ।क्या भारत का राजनैतिक नेतृत्व चीन से राष्ट्रवाद और स्वाभिमान की सीख ले सकता है ? देश रक्षा स्वाभिमान से शुरु होती है ।जब भारत में डंकल प्रस्ताव और विश्वव्यापार संगठन में पर बहस चल रही थी तो लचर दिमागवाले बुद्धिजीवी क्या कहते थे ? वे कहते थे कि देखो , चीन भी विश्वव्यापार संगठन में जाने की कोशिश कर रहा है । तो हम पीछे क्यों रहें ?ऐसा सोचने वालों का देश पीछे रहेगा ।चीन का विदेशी व्यापार भारत से अधिक मजबूत है ।चीन ने अभी तक विश्वव्यापार संगठन में प्रवेश नहीं किया , क्योंकि वह अपनी शर्त पर शामिल होना चाहता है । उसकी शर्त मानना अमरीका को मुश्किल पड़ रहा है ।इस बात को लेकर भारत के समाचारपत्र चीन की तारीफ क्यों नहीं करते हैं ?

पाकिस्तान और चीन में से कौन बड़ा दुश्मन है - यह एक गौण प्रश्न है । संभवत: हमारी उलझन दोनों से एक जैसी है । हमारा मुख्य संघर्ष साम्राज्यवादी शक्तियों से है , क्योंकि उनका हमला हमारे राष्ट्रवाद और स्वाभिमान पर है । हमारी राष्ट्र भावना को कमजोर करने के लिए वे सांस्कृतिक हथियारों का इस्तेमाल कर रहे हैं ।अगर साम्राज्यवादी शक्तियों से हम संघर्ष कर पाएंगे , तो पाकिस्तान और चीन से संबंध भी सुधर सकेगा ।

भारत की विदेश नीति हमेशा कमजोर रही है ।फिर भी कुछ समय तक साम्राज्यवादी शक्तियों का प्रतिरोध हमारी विदेशनीति का एक पहलू रहा ।निर्गुट सम्मेलन को इसी के लिए संचालित किया जाता रहा । लेकिन निर्गुट सम्मेलन में अपनि भूमिका अदा करने के लिए भारत का नेतृत्व सोवियत रूस पर निर्भर हो गया और जब सोवियत रूस का पतन हुआ,तब निर्गुट सम्मेलन भी प्रभावहीन हो गया । उसके स्थान पर कोई नया अंतर्राष्ट्रीय ढ़ाँचा बनाया नहीं गया है । तब से साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध भारत की कोई रणनीति नहीं रह गयी है । सार्क देशों को मिलाकर हो , या एशिया ,अफ़्रीका और लातिनी अमरीका के कई देशों

को लेकर हो- एक अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का ढ़ाँचा बनना ही चाहिए । इस संबंध में चीन की दूर दृष्टि में भी कमी है । केवल अपने देश की विशालता और राष्ट्रीय स्वाभिमान के बल पर चीन लम्बे समय तक साम्राज्यवादियों का प्रतिरोध नहीं कर सकेगा ।एक अंतर्राष्ट्रीय ढ़ाँचा बनाने के लिए चीन पहल करेगा तो पड़ोसियों से भी उसका संपर्क ज्यादा नरम और भाईचारा वाला होगा । मलेशिया के मोहम्मद महातीर भी साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रतिकार के लिए सचेत और मुखर रहते हैं ।उन्हें भी चाहिए कि एक नये अंतर्राष्ट्रीय ढाँचे की पहल करें ।

भूमंडलीकरण , वैश्वीकरण ,खगोलीकरण , जगतीकरण आदि कई शब्दों का प्रयोग हो रहा है - अंग्रेजी शब्द , ग्लोबलाइजेशन के लिए । आधुनिक विश्व में तीन प्रकार के जगतीकरण हुए हैं । अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में प्रत्यक्ष साम्राज्यवाद के द्वारा जगतीकरण का एक ढाँचा यूरोपीय देशों ने बनाया । जब यूरोप का बौद्धिक उत्थान हुआ और समुद्र पर उनकी श्रेष्ठता प्रमाणित हो गयी तो यूरोप के लोगों ने पूरी दुनिया से धन संपत्ति बटोरने के लिए समुद्री यात्राएं कीं । अनेक भूखंडों के मूलवासियों को हटाकर वहाँ पर वे खुद बस गये । दूसरे देशों पर उन्होंने अपना प्रत्यक्ष शासन यानि साम्राज्य स्थापित किया । आधुनिक यंत्र विद्या पहली बार साम्राज्य की केन्द्रीय व्यवस्था बनाए रखने में मददगार हुई । उसके पहले के युगों में जो साम्राज्य होते थे उनकी केन्द्रीय व्यवस्था नहीं हो सकती थी और शीघ्र ही वे बिखर जाते थे । सिकंदर और सीजर से लेकर सम्राट अशोक का यह किस्सा है कि थोड़े से समय के लिए धन बटोरा जाता था । लेकिन यंत्र विद्या केवल यूरोपीय साम्राज्यवाद के केन्द्रीकृत ढाँचे के तौर पर टिकी रही और शताब्दियों तक शोषण का अनवरत सिलसिला चलता रहा । कहावत बन गयी कि " ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य कभी डूबता नहीं है । " दूसरे विश्व युद्ध के बाद इस प्रकार के जगतीकरण का अध्याय समाप्त हुआ ।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद दो नये प्रकार के जगतीकरण शुरु हुए । उसकी एक धारा संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा चलायी गयी । संयुक्त राष्ट्र संघ की महा सभा में राष्ट्रों की बराबरी मानी गई थी । इसलिए बहुत सारी बातचीत और लेन-देन राष्ट्रों के बीच बराबरी के आधार पर होती थी। सारे विश्व से साधन इकट्ठा कर दुनिया से भूख , बीमारी , अशिक्षा , नस्लवाद , हथियारवाद आदि मिटाने के लिए

महत्त्वपूर्ण पहल और कार्रवाइयाँ हुईं । उस समय की अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक सहयोग की संस्थाओं की कार्य प्रणाली भी अपेक्षाकृत ज्यादा जनतांत्रिक थी । अंकटाड और डंकल प्रस्ताव के पहले की गैट संधि इसका उदाहरण है । संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से जिस प्रकार का यह जगतीकरण चला , उससे अमरीका बिलकुल खुश नहीं था।अमरीका ने जब देखा कि उसके साम्राज्यवादी उद्देश्यों में राष्ट्र संघ बाधक बन सकता है , उसने राष्ट्र संघ को चंदा देना बंद कर दिया और राष्ट्र संघ से बाहर ही अंतर्राष्ट्रीय कूटनैतिक कार्यकलापों को बढ़ावा देने लगा । सोवियत रूस के पतन के बाद अमरीका को मौका मिल गया कि राष्ट्र संघ को बिलकुल निष्क्रीय बना दिया जाय । ईराक और युगोस्लाविया पर हमला राष्ट्र संघ की उपेक्षा का ताजा उदाहरण है । राष्ट्र संघ के माध्यम से चलने वाला जगतीकरण इस वक्त पूरी तरह अप्रभावी हो गया है ।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अमरीका की अपनी बुद्धि से अन्य एक प्रकार का जगतीकरण भी शुरु किया गया था । उसको उन दिनों वामपंथियों ने आर्थिक साम्राज्यवाद कहा , क्योंकि इस बीच अमरीका ने साम्राज्यवाद की अपनी शैली विकसित की थी । उसमें किसी औपनिवेशिक देश पर प्रत्यक्ष शासन करने की जरूरत नहीं होती है । कमजोर और गरीब मुल्कों पर दबाव डालकर उनकी आर्थिक नीतियों को अपने अनुकूल बना लेना उसकी मुख्य कार्रवाई होती है । उन आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप आत्मनिर्भरता खतम हो जाती है और औपनिवेशिक देश धनी देशों पर पहले से अधिक निर्भर हो जाते हैं । जब कोई बड़ा संकट होता है और धनी देशों की मदद की जरूरत होती है तब धनी देशों के द्वारा नयी शर्तें लगायी जाती हैं जिससे औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था को थोड़े समय की राहत मिलती है;लेकिन वह अर्थव्यवस्था अधिक आश्रित हो जाती है,और धनी देशों के द्वारा शोषण के नये रास्ते बन जाते हैं।औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था वाला देश आर्थिक रूप से इतना कमजोर और आश्रित होता है कि उसकी राजनीति को भी आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है ।उपर्युक्त उद्देश्य से १९४५ में ही विश्वबैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष नामक अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं की स्थापना हुई । १९९५ में विश्व व्यापार संगठन बना । ये तीन संस्थायें हैं जो नये जगतीकरण के तीन महत्वपूर्ण स्तंभ हैं । विश्वबैंक विकास के लिए ऋण देकर सहायता करता है और कैसा विकास होना चाहिए उसकी सलाह देता है । कई बार कर्ज लेने वाला देश विश्वबैंक की विकासनीति को अपनी विकास नीति के तौर पर मान लेने के लिए बाध्य होता है । इसलिए सारे गरीब देशों में एक ही प्रकार की विकास नीति प्रचलित हो रही है । यह विश्वबैंक के द्वारा बतायी गयी विकास नीति है ।

अक्सर हम विदेशी मदद की बात सुनते हैं । विश्वबैंक ,मुद्राकोष या धनी देशों की सरकारों से कम ब्याज पर जो ऋण मिलता है , उसी को विदेशी मदद कहा जाता है । विदेशी मदद के साथ-साथ विश्वबैंक की सलाह भी मिलती है कि हम अपने विकास के लिए क्या करें ।उनकी सलाह पर

चलने का एक नतीजा होता है कि विदेशी मुद्रा की आवश्यकता बढ़ जाती है और उसकी कमी दिखाई देती है । जब विदेशी मुद्रा का संकट आ जाता है तब हमारा उद्धार करनेवाला अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष होता है । उसके पास जाना पड़ता है ।वह मदद देते समय शर्त लगाता है। उसकी शर्तें मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं ;

(१) आर्थिक विकास के कार्यों मे सरकार की प्रत्यक्ष भागीदारी नहीं होनी चाहिए। किसी उद्योग , व्यापार या कृषि को प्रोत्साहित करने के लिए सरकारी अनुदान ,सबसिडी नहीं दी जाएगी ।

(२) देश की आर्थिक गतिविधियों में हिस्सा लेने के लिए विदेशी पूंजी और विदेशी कंपनियों को अधिक से अधिक छूट देनी होगी ।उन पर और उनकी वस्तुओं पर लगने वाली टिकस कम कर दी जाएगी । यानी विकासशील देश की अर्थव्यवस्था में धनी देशों के पूंजीपतियों का प्रवेश अबाध रूप से होगा ।इसके अलावा मुद्राकोष मदद माँगने वाले देश की मुद्रा का अवमूल्यन कराता है। ताकि हमारा सामान उनके देश में सस्ता हो जाए और उनकी वस्तुओं का दाम हमारे लिए महँगा हो जाए ।

सारे विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था विकसित देशों की अर्थव्यवस्था के साथ इस प्रकार जुड़ जाती है । इस प्रकार का जुड़ाव प्रत्यक्ष साम्राज्यवाद के युग में भी था । फर्क यह है कि उस जमाने में हमारी अर्थनीति और विकासनीति का राजनैतिक निर्णय साम्राज्यवादी सरकार करती थी । आज हम खुद अपनी अर्थनीति को धनी देशों की अर्थनीति के साथ जोड़ने का निर्णय कर रहे हैं ।वे लोग सलाह देते हैं , हमारी सरकार उसी सलाह को निर्णय का रूप देती है। इसलिए इसको जगतीकरण कहा जा रहा है ।

१९४५ से १९९५ तक विकासशील देशों की अर्थनीति को धनी देशों की अर्थनीति का पिछलग्गु बनाने के लिए जितने नियम और तरीके बनाये गए थे , उन सारे नियमों को विश्वव्यापार संगठन कानून का रूप देकर अपना रहा है । विश्वबैंक सलाह देता है ;मुद्राकोष शर्त लगाता है और विश्वव्यापार संगठन कानून चलाता है । यहाँ दन्ड का प्रावधान भी है । यह व्यापार के मामले में विश्व सरकार है । लेकिन इस सरकार के निर्णयों को विकासशील देश अपने हित की दृष्टि से प्रभावित नहीं कर पाते हैं । व्यापार की विश्व सरकार में वे केवल दोयम दर्जे के सदस्य हैं ।

विश्वबैंक , मुद्राकोष और विश्वव्यापार संगठन तीनों अपने - अपने ढंग से काम कर रहे हैं। लेकिन ये एक दूसरे के पूरक हैं ।तीनों में इतना मेल है कि तीनों मिलकर विकासशील देशों एक ही रास्ता दिखाते हैं - एक ही दिशा में ढ़केलते रहते हैं । इसलिए सारे विकासशील देशों की समस्याएं एक ही प्रकार की होती जा रही हैं । इससे जो प्रतिक्रिया होगी , जो असन्तोष होगा,उसको हम एक

दिशा में ले जा सकेंगे , तब संभवत: एक नयी यानी चौथे प्रकार का जगतीकरण शुरु होगा । क्योंकि तीसरी दुनिया के सारे देशों की समस्याएं सुलझाने के बजाए जटिल होती जा रही हैं , मौजूदा जगतीकरण की व्यवस्था के खिलाफ़ सारे देशों में गुस्सा और विद्रोह होना चाहिए । धनी देशों पर अपनी निर्भरता खतम कर गरीब देश अगर एकल ढंगसे या परस्पर के सहयोग से आत्मनिर्भर होने का लक्ष्य अपना लेंगे तो प्रचलित जगतीकरण के विरुद्ध एक विश्वव्यापी विद्रोह का माहौल बन जाएगा । विकासशील देशों के परस्पर सहयोग से जो अंतर्राष्ट्रीय संबंध बनेगा , उसके आधार पर नये जगतीकरण का आरंभ होगा ।

आर्थिक संप्रभुता क्या है ? : किशन पटनायक

इतिहास की उथल - पुथल से , युद्ध - संधि , विकास और विद्रोह से राष्ट्रों का निर्माण तथा नवनिर्माण होता है । एक बहुत बड़े उथल - पुथल से भारतीय राष्ट्र का नवगठन १५ अगस्त १९४७ को हुआ । बीसवीं सदी के इस काल खण्ड में आज के अधिकांश विकासशील देशों का नये सिरे से अभ्युदय धरती पर हुआ । ये सारे राष्ट्र आज़ाद हैं । आज़ाद राष्ट्र की संप्रभुता होती है । यानी प्रत्येक राष्ट्र अपनी बुद्धि विवेक से अपनी जनता की सुरक्षा और कल्याण संबंधी नीतियों का निर्णय करता है ।देश के बाहर की कोई शक्ति हम पर यह लाद नहीं सकती है कि हमारी नीतियाँ और कानून क्या होंगे । इसीको राष्ट्र की संप्रभुता कहा जाता है ।

विश्व व्यापार संगठन एक विदेशी शक्ति है । कोई पूछ सकता है कि आपका देश उसका सदस्य है तो वह विदेशी कैसे है ?यह सही है कि हमारी सरकार ने गलत बुद्धि से परिस्थितियों के दबाव में आकर भारत को इसका सदस्य बना दिया है । राष्ट्रों के बीच अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से यह संगठन बना है । लेकिन इसका अधिकार क्षेत्र बहुत ज्यादा है।संयुक्त राष्ट्र संघ का अधिकार इतना नहीं है जितना इस संगठन का है । यह संगठन हमें निर्देशित करता है कि अमुक कानून बनाओ । उसका निर्देश एक कानून है और हमे वह दंडित कर सकता है । एक व्यापार-सहयोग संस्था को धनी शक्तिशाली देशों ने एक विश्व सरकार का दर्जा दे दिया है । उनकी आपसी सहमति जिस बात पर हो जाती है वह संगठन का कानून बन जाता है।उसके निर्णयों को विकासशील देश बिलकुल प्रभावित नहीं कर सकते हैं । निम्नलिखित कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि कैसे हमारे ऊपर निर्णय लाद दिये जाते हैं ।

स्वाधीनता के प्रथम दिवस से हमारा लक्ष्य रहा है कि भारत खाद्य के मामले में आत्म-निर्भर बनेगा। शुरु के दिनों मे हमारा खाद्य उत्पादन बहुत कम था और खाद्यान के आयात के लिए अमेरिका के ऊपर निर्भर रहना पड़ता था । हमको अपमान झेलना पड़ता था । बाद में स्थिति बहुत

सुधरी और खाद्यान्न के आयात की जरूरत नहीं रह गयी । यह विश्वव्यापार संगठन अब कहता है कि हम खाद्यान्न आयात करने के लिए बाध्य हैं ।बुनियादी जरूरत की चीजों के लिए किसी भी देश को अन्य देशों पर निर्भर नहीं होना चाहिए । जिसके पास कृषि भूमि है उस देश को अपनी आबादी के प्रति-दिन के आवश्यक भोजन के लिए अन्य देशों पर निर्भर नहीं होना चाहिए । गरीब देश खाद्यान के लिए बाहरी शक्तियों पर निर्भर रहें ताकि उनको दबाया जा सके , अंतर्राष्ट्रीय मामलों में झुकाया जा सके । कोई भी कारण बता कर वे अपना सहयोग बन्द कर सकते हैं । उसका ताजा उदाहरण सामने है। परमाणु विस्फोट का बहाना बना कर अमरीका तथा अन्य देशों ने भारत में पूंजी निवेश पर रोक लगा दी थी । स्वीडेन से बच्चों की शिक्षा के लिए जो पैसा आ रहा था उसको भी स्वीडेन की सरकार ने बंद कर दिया तो राजस्थान में बहुत सारे प्राथमिक स्कूल बन्द होने के कगार पर आ गए थे।

यह एक भयंकर गलती होगी कि हम प्रतिवर्ष खाद्यान्न का आयात करेंगे। इससे हमारी कृषि दिशाहीन और उद्देश्यहीन हो जाएगी । कृषि हमारा सबसे बड़ा उत्पादन का क्षेत्र है ।आबादी का दो-तिहाई हिस्सा इस क्षेत्र में रोजगार ढूँढता है । अंग्रेजों ने देढ़ सौ साल के राजत्व में हमारे देहातों को तहस नहस किया था । कृषि और गाँव को उस दशा से उबारने के लिए कृषि को सबसे अधिक महत्व देना होगा । किसानों को विशेष सहायता देनी होगी ,जिसको अनुदान या सब्सिडी कहा जाता है । भारी सब्सिडी के बल पर ही यूरोप और अमेरिका के देशों में कृषि समृद्ध हुई है। पूंजीवादी देशों में किसानों को सब्सिडी की जरूरत होती है। विश्वव्यापार संगठन हमें निर्देश देता है कि कृषि को अनुदान हम नहीं दे सकते हैं। छोटी पूंजी पर चलने वाले छोटे उद्योगों को भी हम संरक्षण नहीं दे सकते हैं । आधुनिक विशाल पैमानेके उद्योगों के लिए हमें विदेशी सहायता चाहिए क्योंकि इतना अधिक पूंजी निवेश हम नहीं कर सकते हैं । कम पूंजी वाला छोटा उद्योग ही हमारा स्वतंत्र राष्ट्रीय उद्योग हो सकता है । इसमें बहुत सारी देशी तकनीक का प्रयोग हो सकता है । इसको संरक्षण देना हमारा कर्त्तव्य है ।लेकिन विश्वव्यापार संगठन के आदेश के मुताबिक हम इनको संरक्षण नहीं दे सकते हैं ।जो भी संरक्षण पहले मिला था उसको एक-एक करके हटा रहे हैं । हमारे देश में हम अपनी कृषि और लघु उद्योग को संरक्षण देने से वंचित हैं , तो हम आजादी की लड़ाई क्यों लड़े थे ?

उल्टा हमे निर्देश होता है कि विदेशी कंपनियों को हम उतनी ही सुविधा दें , जितना अपने उद्योगों को देते हैं । इसके बारे में विश्वव्यापार संगठन की एक धारा है जिसका नाम है " राष्ट्रीय व्यवहार " । हम को तो करना यह चाहिए कि सबसे पहले हम अपने उद्योगों को संरक्षण दें । उसके बाद प्रतियोगिता के क्षेत्र में हम विकासशील देशों के उद्योगों को ज्यादा सुविधा दें और धनी देशों को कम । पाकिस्तानी उद्योगों को ज्यादा दें और अमरीकी को कम । लेकिन यह सब हम नहीं कर सकते हैं ।अमरीका और यूरोप औपनिवेशिक शोषण के बल पर अपना महान उद्योग खड़ा कर चुके हैं ।

विकासशील देशों का उद्योग लड़खड़ा रहा है । दोनों के प्रति समान व्यवहार नहीं हो सकता है । हमें यह कहने में लज्जा नहीं होनी चाहिए कि हम प्रतियोगिता में जर्मनी या ब्रिटेन के समकक्ष नहीं हैं । मुक्त व्यापार का जो अर्थ वे लगाते हैं वह हमें मान्य नहीं है ।अपने देश में अपनी कृषि , अपने उद्योग को हम संरक्षण अवश्य देंगे ।

बैंक बीमा और पेटेंट : किशन पटनायक

राष्ट्र की सारी बचत राशि बैंकों और बीमा के पास जाती है । वहाँ हमारी राष्ट्रीय पूंजी संचित है । उस पर भी विदेशी कंपनियों को वर्चस्व चाहिए । इसलिए भाजपा सरकार कांग्रेस का समर्थन पाकर इससे संबंधित कानूनों को बदल रही है । पेटेंट कानून भी बदल रहा है । दुनिया से सीखकर नयी तकनीकों को अपनाने का रास्ता इससे बन्द हो जायेगा । प्रत्येक उन्नत देश ने अतीत में दूसरे देशों और दूसरी सभ्यताओं से ज्ञान-विज्ञान का सहारा लिया है । आधुनिक टेक्नोलाजी के बारे में अमरीका ने यूरोप से सीखा , जापान ने अमरीका से सीखा । अब विकासशील देशों की बारी आई तब नियम बन गया है कि यह चोरी है।तकनीकी का अनुसरण करना भी अपराध है । सीखना और प्रयोग करना भी अपराध है।विदेशी उद्योगों को हम राष्ट्रीय सम्मान देने के लिए बाध्य होंगे , लेकिन उन उद्योगों से तकनीक की शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते हैं । उनकी कंपनियों के लिए हम दरवाजा खोल देंगे लेकिन हमारे प्रशिक्षित मजदूरों के लिए उनका दरवाजा बंद रहेगा । अगर कंपनी यहाँ आती है तो मजदूर वहाँ भी जा सकते हैं - यह राय सारे विकासशील देशों की है ।लेकिन यह मानी नहीं जाती है क्योंकि विश्वव्यापार संगठन के नियम मतदान के द्वारा नहीं बने हैं ।बातचीत के द्वारा , धौंस जमाकर निर्णय कराए जाते हैं । विश्वबैंक , अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्वव्यापार संगठन ये तीनों धनी पूँजीवादी देशों के हथकंडे हैं । हम उसमें सदस्य होने पर भी विदेशी हैं। जैसे कि हम अंग्रेजी साम्राज्य में थे लेकिन अंग्रेज हमारे लिए विदेशी थे ।

विदेशी पूंजी भारत और चीन

कोई पूछ सकता है - ये सब तो नकारात्मक बातें हैं , कुछ सकारात्मक पहलू भी तो होगा ? हमारे देश में पूंजी की कमी है । अब बड़ी मात्रा में विदेशी पूंजी आ रही है । अगर हम पूंजी प्राप्त कर रहे हैं तो क्या उससे हमारा भविष्य बेहतर नहीं होगा ?

अगर अर्थनीति की बातों को विद्वान लोग लोक भाषा में सहज ढंग से समझा कर लिखते तो इस तरह के भ्रम नहीं होते । तब तो साधारण आदमी अपनी बुद्धि का भी इस्तेमाल कर सकता है ।इस वक्त चाहिए कि जो लोग अर्थशास्त्री हैं और देशभक्त भी हैं वे भारतीय भाषा में औसत शिक्षित लोगों

को समझायें की देश की अर्थनीति का क्या हो रहा है । इससे विदेशी पूंजी के बारे में पढ़े लिखे लोगों की मोहग्रस्तता टूटती ।(इस विषय पर सरल भाषा में इन लेखों को पढा जा सकता है ।-**अफ़लातून**)

तर्क के लिए मान लें कि विदेशी पूंजी बड़ी मात्रा में आ रही है । तो पूछना चाहिए क्या फायदा हुआ है ? १९९१ से हम कह रहे हैं कि आ रही है , विदेशी पूंजी उत्साहित होकर आ रही है । तब से लोगों का ध्यान कृषि से हटकर उद्योग के ऊपर बंध गया है - उद्योग की बहुत ज्यादा तरक्की होगी । हमारा औद्योगिक क्षेत्र गतिशील हो जाएगा ; बहुत रोजगार भी देगा ।

नयी आर्थिक नीति के समर्थक लोगों को यह समझ में आना चाहिए कि जितनी मात्रा में विदेशी पूंजी भारत में आ रही है और जिस काम के लिए आ रही है , उससे भारत के औद्योगीकरण में कोई तेजी नहीं आएगी । जो भी विदेशी पूंजी आ रही है उसका निवेश मोटरगाड़ी ,बिस्कुट,टेलिविजन,वाशिंग मशीन, कोका कोला ,कंप्यूटर,सौन्दर्य प्रसाधन आदि उपभोक्तावादी उद्योगों में हो रहा है ।इन वस्तुओं का खरीददार देश का संपन्न वर्ग है । संख्या में यह बहुत छोटा है। आश्चर्य की बात यह है कि उन वस्तुओं के खरीददारों की संख्या बढ़ाने के लिए पांचवें वेतन आयोग के बहाने देश के सभी सरकारी अफसरो-कर्मचारियों का वेतन भत्ता बढ़ाया गया है । वेतन लेनेवाले और उनके ट्रेड यूनियन भी शायद नहीं जानते हैं कि उनके वेतनों में वृद्धि का मुख्य कारण यह है । वे यह जानेंगे तो उन्हें कुछ शर्म भी लगेगी ।

इसके बावजूद उद्योग में प्रगति नहीं होगी उलटा आर्थिक प्रगति के बगैर वेतनवृद्धि होने से विषमतायें बढ़ेंगी और अर्थव्यवस्था में नये असंतुलन पैदा होंगे । उद्योगों में गतिशीलता तब आयेगी जब आबादी का बड़ा हिस्सा उद्योग द्वारा निर्मित वस्तुओं का खरीददार होगा । इसका मतलब है कि कृषि की उन्नति से जब छोटे किसानों और मजदूरों की क्रय शक्ति बढ़ेगी तब उनकी आवश्यकता पूरी करने वाले उद्योगों को बल मिलेगा । आधुनिक उपभोक्तावादी बाजार पैदा करके भारत के उद्योगों में लम्बे समय तक तेजी नहीं आएगी ।रोजगार बढ़ने से क्रय शक्ति बढ़ती है ।भारत में जितना देशी या विदेशी पूंजी निवेश १९९१ के बाद हो रहा है उससे रोजगार बढ़ने के बजाये घट रहा है । अत्याधुनिक टेक्नोलाजी के कारण ऐसा हो रहा है । बेरोजगारी अधिक व्यापक होगी तो उद्योग किस आधार पर बढ़ेगा ? भारत के कई प्रसिद्ध औद्योगिक घरानों की ओर से (उदाहरण के लिए टाटा कंपनी) यह ऐलान हो रहा है कि अगले कुछ सालों में उनके मजदूरों की संख्या कम हो जाएगी ।इनसे पूछा जाना चाहिए कि मजदूरों की संख्या अगर घटती जाएगी तो किन किन समूहों की क्रय शक्ति के बल पर भारत का औद्योगीकरण होगा ?

विदेशी पूंजी के बारे में और एक तथ्य जानना जरूरी है । सारे विश्व में प्रत्यक्ष पूंजी निवेश के जो परिणाम हैं उसका नब्बे प्रतिशत दुनिया के विकसित औद्योगिक इलाकों में चला जाता है। यानि

उत्तर अमरीका ,यूरोप , जापान में । चीन का जो नया औद्योगीक इलाका चाएन के तटीय प्रांत में विकसित हो रहा है वह भी इसमें शामिल है । बाकी दस प्रतिशत में से अपना हिस्सा मांगने के लिए सारे विकासशील देश होड़ लगाये हुए हैं । इससे यह समझ में आना चाहिए कि हमको एक नगण्य हिस्सा ही मिल सकता है । हमारी अपनी पूंजी से विदेशी पूंजी का अनुपात बहुत छोटा होगा । लेकिन विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के लिए हम अपनी औद्योगिक नीतियों को विदेशियों के हित में बदल रहे हैं । नतीजा यह हो रहा है कि हमारी अपनी पूंजी का सही उपयोग नहीं हो पा रहा है ।वह सड़ रही है । क्योंकि विदेशी पूंजी को खुश करने के लिए हम दिन-रात सार्वजनिक क्षेत्र की निन्दा कर रहे हैं । उसकी इतनी बदनामी हो चुकी है कि लोगों के मन से भी उस पर भरोसा उठ रहा है ।उसको बेचने पर भी उचित दाम नहीं मिलेगा ।होना यह चाहिए था कि सार्वजनिक उद्योगों की त्रुटियों को समझकर उनकी कार्यकुशलता बढ़ाई जाती । स्वदेशी उद्योग का नारा देने वालों को यही करना चाहिए था ।

आयात - निर्यात और मीडिया : किशन पटनायक

February 13, 2007 by अफ़लातून | Edit

‘ हम निर्यात करेंगे तो हमारा विकास होगा ।’ मीडिया के लिए यह एक मंत्र है । विश्व बैंक से यह मंत्र आया है । हमारे विद्वानों में यह साहस नहीं है कि इस गलत धारणा को देश के दिमाग से हटाने की कोशिश करें । भारतीय अर्थनीति में निर्यात की भूमिका के बारे में एक सही दृष्टि होनी चाहिए ।

कुछ ही देश होंगे जिनका प्रारंभिक विकास निर्यात पर निर्भर है । साधारण नियम यह है कि जिस देश में अगर कृषि और उद्योग का विकास हो रहा है तो विकास का तकाज़ा है कि आयात निर्यात में भी वृद्धि की जाए ।यूरोप अमरीका में भी यह हुआ । उद्योग का तीव्र विकास होने लगा तो निर्यात भी बढ़ा ।

विश्व बैंक जानबूझकर विकासशील देशों को गलत सलाह देता है । निर्यात को कृत्रिम ढंग से बढ़ाने के लिए विकासशील देश अपनी वस्तुओं का दाम कम कर देते हैं । इससे पश्चिम के धनी देशों को बहुत फायदा है ।एक हिसाब के मुताबिक १९८० के बाद गरीब देशों से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का दाम ४५ प्रतिशत घटा है । यानी पश्चिम के उपभोक्ताओं को हमारी चीजें आधे दाम पर मिल जाती हैं । इसी कारण पश्चिम के नागरिक मौजूदा अर्थव्यवस्था से खुश हैं ।

विकासशील देशों को यह देखना होगा कि उनका आयात निर्यात से अधिक न हो । आयात अगर निर्यात से ज्यादा होगा तो व्यापारिक घाटा होगा । पिछले दस साल के आयात-निर्यात को देखेंगे तो हम पाते हैं कि भारत हमेशा घाटे में व्यापार कर रहा है ।

विकासशील देशों के आयात को बढ़ाने के लिए विश्वव्यापार संगठन का अपना नियम है । आयात शुल्कों को घटाने के लिए मुद्राकोष और विश्वव्यापार संगठन दोनों दबाव डालते हैं । जैसे-जैसे उपभोक्तावादी संस्कृति फैलती है और आयात शुल्क शून्य की ओर बढ़ता है आयात तीव्र गति से बढ़ता है ।उसके साथ निर्यात का कोई मेल नहीं रह जाता है ।निर्यात बढ़ाने की आतुरता में हमारी सरकार निर्यातकारी व्यवसाइयों की गलतियों को अनदेखी कर देती है । इसका फायदा उठाकर आयात-निर्यात के दौरान ये व्यवसायी देश का धन विदेशों में ले जाकर वहाँ के बैंकों में रखते हैं। यानी विदेशों में भारत का काला धन संचित होता है ।राष्ट्रपति के.आर. नारायण जब उपराष्ट्रपति थे , तब उन्होंने एक बार कहा था कि केवल यूरोप के बैंकों में भारत का एक लाख करोड़ रुपया अवैध रूप से रखा हुआ है ।

रुपया हमारी आर्थिक स्थिरता का प्रतीक है । लेकिन रुपया हर साल गिरते जा रहा है। कभी स्थिर नहीं रहा ,न ऊपर चढ़ा। कभी मुद्राकोष के आदेश से वह गिरता है तो कभी बाजार के दबाव में गिरता है । इस पर जब चिंता व्यक्त होती है तो मीडिया प्रचार करती है कि इससे निर्यात को फायदा है । निर्यात सर्वोपरि है ।उसके ऊपर विकास निर्भर है । अगर रुपया गिरने से निर्यात बढ़ेगा तो गिरने दो । इस प्रकार की मानसिकता सचमुच राष्ट्र के लिए लज्जा की बात है ।

मीडिया अक्सर इस बात को छुपाती है कि निर्यात के लिए सरकार को कितना घाटा सहना पड़ता है ?सरकार को कितनी सबसिडी निर्यात को देनी पड़ती है ।सबसिडी को बदनाम किया जाता है,निर्यात का उल्लेख तक नहीं होता है ।

मीडिया का इसमें अपना स्वार्थ है । मीडिया के बहुत सारे मालिक हैं जिनका अपना आयात-निर्यात का धंधा रहता है । निर्यात को प्रोत्साहन मिलने पर या आयात को नि:शुल्क कर देने पर उनको बहुत ज्यादा फायदा होता है ।संपन्न लोगों का वर्ग स्वार्थ इसमें है कि निर्यात बढ़ रहा है कह कर आयात बढ़ाने की छूट मिल जाती है और संपन्न वर्ग की चाह के मुताबिक विदेशों से उपभोक्तावादी वस्तुएं देश में आ जाती हैं । मीडिया का जुड़ाव इसी वर्ग के साथ है । हम सूचना के लिए मीडिया का सहारा लेते हैं । लेकिन मीडिया निष्पक्ष सूचना कम देती है । अर्थनीति और संस्कृति के बारे में गलत धारणाओं को फैलाना इसका मुख्य काम होता जा रहा है ।

निर्यात के बारे में हम कह सकते हैं कि एक अच्छी आधुनिक अर्थव्यवस्था का निर्यात एक अनिवार्य अंग है । लेकिन निर्यात का मूल्यांकन आयात के साथ जोड़कर होना चाहिए । आयात-निर्यात में देश की कृषि और उद्योग का विकास प्रतिफलित होना चाहिए । केवल निर्यात में वृद्धि आर्थिक सुधार का सूचक नहीं है ।